International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 25-12-2020; Accepted: 13-01-2021; Published: 18-02-2021
www.hindijournal.com
Volume 7; Issue 1; 2021; Page No. 58-61

कबीर के काव्य में मानव

डॉ. तृप्ति उकास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शास. महाकोशल कला एवं वाणिज्य, स्वशासी महाविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
सन्त परम्परा का अपना ही विशिष्ट दर्शन है, जो स्वसिद्धान्तों को प्रतिपादन स्वानुभूति के आधार पर करते हैं। वेद, प्रस्थानत्रयी या किसी अन्य स्वतंत्र शास्त्र से सन्त परम्परा के दर्शन से प्रसूत नहीं हैं। ये दर्शन सैद्धान्तिक तार्किकता के अपेक्षा व्यावहारिकता पर अधिक बल देते हैं। विशिष्ट विचारात्मक ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार की समस्याओं के समाधान पर विशेष ध्यान देते हैं। सन्त परम्परा के अग्रदूत कबीर के दर्शन के प्रमुख स्रोत सद्गुरु के उपदेश, सतसंग तथा स्वानुभूति ही हैं। कबीर दर्शन उस मानव का दर्शन है, जिस का मूल ही सहजता है। कबीर दर्शन, मानव का दर्शन और मानव के लिये दर्शन है। कबीर दर्शन का एकमात्र द्रष्टव्य मानव है। कबीर दर्शन मानवीय मौलिक समस्याओं का समाधान है और मानवीय मूल्यों की स्थापना करने वाला है। उस में जिज्ञासा, श्रद्धा, विश्वास, अहमन्यता, माया–मोह–विनिर्मुक्तता, ऐन्द्रिक संयम, अनुबन्ध चतुष्ट्य का संगम है। मानव का अस्तित्त्व पूर्णतः कर्मवाद पर आधारित है। मनुष्य की मानवता का परिचायक तत्त्व कर्म है। कर्म के आधार पर मानव अन्य समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ है। कर्म की उच्चता के आधार पर जीव मानव बनता है, तो कर्म की निम्नता के आधार पर जीव मानवेत्तर प्राणी बन जाता है। कर्म कार्य–कारण के नियम पर आधारित व्यवस्था है। इस लिये कबीर दर्शन मानव तथा अन्य सभी प्राणियों में समान रूप से पाये जाने वाले जैविक बुभुक्षा से सम्बद्ध कर्मों में लिप्त मानव को मानवाकार होते हुए भी मानवेत्तर प्राणी मानता है। कबीर दर्शन व्यापक नैतिक व्यवस्था को ही धर्म मानता है और कर्मकाण्डों का विरोध करता है। नैतिक व्यवस्था आन्तरिक होती है, बाह्याचार से उस का कोई सरोकार नहीं होता है। मानव मात्र मानव है। धार्मिक सम्प्रदायों के अनुसार न तो वह हिन्दू है न ही मुसलमान न ही अन्य कुछ और। विभिन्न जातियाँ–उपजातियाँ चातुर्वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था या सामाजिक व्यवस्था को मात्र चलाने के लिये हैं। मानव का अस्तित्त्व इन सब से ऊपर है।

मूलशब्दः सन्त परम्परा का दर्शन, कर्मवाद, साधना मार्ग की विशेषताएँ, पुरुषार्थ चतुष्टय, कबीर का दर्शन।

प्रस्तावना

सन्त परम्परा के दर्शनों का स्रोत कोई शास्त्र विशेष नहीं है, अपितु सन्त परम्परा के दर्शन स्वानुभूति प्रसूत हैं। सन्त परम्परा के दर्शनों की आधारभूमि विचार नहीं अपितु आचार हैं। इस लिये इन का स्रोत कोई विचारपरक शास्त्र नहीं है वरन् आचारपरक स्वानुभूति है। सन्त परम्परा के दर्शनों के लिये किसी भी लिखा–लिखी का कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है तो मात्र देखा–देखी का। गुरु निर्देश तथा सत्संग से अर्जित वैचारिक विषय भी स्वानुभूति के निकष पर परख में खरे उतरने पर ही ग्राह्य होते हैं अन्यथा वह ग्राह्य नहीं हैं। स्वानुभूति के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान का प्रमाण नहीं है। इस प्रकार सन्त परम्परा का अपना ही विशिष्ट दर्शन है, जो स्वसिद्धान्तों को प्रतिपादन स्वानुभूति के आधार पर करते हैं। वेद, प्रस्थानत्रयी या किसी अन्य स्वतंत्र शास्त्र से सन्त परम्परा के दर्शन से प्रसूत नहीं हैं। ये दर्शन सैद्धान्तिक तार्किकता के अपेक्षा व्यावहारिकता पर अधिक बल देते हैं। विशिष्ट विचारात्मक ज्ञान की अपेक्षा व्यवहार की समस्याओं के समाधान पर विशेष ध्यान देते हैं। सन्त परम्परा के अग्रदूत कबीर के दर्शन के प्रमुख स्रोत सद्गुरु के उपदेश, सतसंग तथा स्वानुभूति ही हैं।

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिन मिलै न मोष।
गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटै न दोष।।

कबीर के काव्य में किसी भी पद्धति का अन्धानुकरण नहीं है। कबीर के अनुसार न तो कोई सिद्धान्त निर्भ्रान्ततः सत्य ही है, न ही उस के स्रोत ग्रन्थ या आप्त सामग्री ही पूर्णतः प्रामाणिक हैं क्योंकि अपने मतों के निर्धारण के लिये जिन ग्रन्थों का प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है, उन से उन की पुष्टि उतनी नहीं होती जितनी उस से उलझती जाती है।

उरझि पुरझि करि मरि रह्या चारिउ वेदा माहि।

कबीर दर्शन न तो वाग्विलास ही है और न ही विद्यानुराग मात्र ही है। कबीर दर्शन का प्रयोजन जीवन तथा उस की मूलभूत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना है। यही कारण है, कि कबीर दर्शन का प्रारम्भ उपस्थित समस्याओं के संदर्भ में द्रष्टा से हो कर परम विचार्य ब्रह्म तक होता हुआ समस्याओं के समाधान के रूप में परिणत हो जाता है। यह दर्शन अलौकिकता से उतना सम्बद्ध नहीं है जितना ऐहिक जीवन तथा तज्जन्य समस्याओं तथा उन के समाधान से है। यह दर्शन व्यवहार और परमार्थ का समन्वयकर्ता प्रतीत होता है।

मूवा पीछे जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लौह सब, (तब) पारस कोने काम।।

कबीर दर्शन उस मानव का दर्शन है, जिस का मूल ही सहजता है। कबीर दर्शन, मानव का दर्शन और मानव के लिये दर्शन है। कबीर दर्शन का एकमात्र द्रष्टव्य मानव है। जहाँ एक ओर कबीर दर्शन का प्रारम्भ मानव से ही हुआ है वहीं दूसरी ओर उस का परिणति बिन्दु भी मानव ही है। कबीर दर्शन मानवीय मौलिक समस्याओं का समाधान है और मानवीय मूल्यों की स्थापना करने वाला है। उस में जिज्ञासा, श्रद्धा, विश्वास, अहमन्यता, माया–मोह–विनिर्मुक्तता, ऐन्द्रिक संयम, अनुबन्ध चतुष्ट्य का संगम है।
कबीर के अनुसार व्यावहारिक वैशिष्ट्य के आधार पर मानव वह प्राणी है, जो अपने प्रति ही नहीं दूसरों के प्रति भी विचारशील,

विवेकशील, सत्यानुगामी, सारग्राही, मध्यमार्गी, अहिंसक, समदर्शी, सुशील, क्षमस्वी एवं उदार है। परन्तु मानव योनि होने पर भी अपवाद स्वरूप कुछ मानवों में जन्मजात स्वभाववश अथवा परिस्थितिवश इन गुण/गुणों का अभाव पाया जाता है। कबीर दर्शन इन्हें मानव नहीं मानता है। कबीर दर्शन में मानव की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं मिलती है। एक ओर कबीर ने कहीं भी ऐसा अवांछनीय प्रयास नहीं किया है वहीं दूसरी ओर उन का सम्पूर्ण काव्य मानव मात्र के भीतर के मानव को जाग्रत करने की अविराम यात्रा है। उन का समस्त कथ्य सद्मानव को समर्पित है।

मानव का अस्तित्त्व पूर्णतः कर्मवाद पर आधारित है। मनुष्य की मानवता का परिचायक तत्त्व कर्म है। कर्म के आधार पर मानव अन्य समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ है। कर्म की उच्चता के आधार पर जीव मानव बनता है, तो कर्म की निम्नता के आधार पर जीव मानवेत्तर प्राणी बन जाता है। कर्म कार्य–कारण के नियम पर आधारित व्यवस्था है। इस लिये कबीर दर्शन मानव तथा अन्य सभी प्राणियों में समान रूप से पाये जाने वाले जैविक बुभुक्षा से सम्बद्ध कर्मों में लिप्त मानव को मानवाकार होते हुए भी मानवेत्तर प्राणी मानता है। मानव को निवृत्ति कर्मवाद द्वारा मिलती है। अतः मानव तथा कर्म में अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

मानव की ऐषणाएँ अपरिमित हैं। भारतीय मनीषा के अनुसार इन ऐषणाओं को चतुष्कोटियों में विभक्त किया गया है। इन की चार कोटियों को ही पुरुषार्थ चतुष्टय के नाम से अभिहित किया गया है। मानव की समस्त ऐषणाओं का समावेश अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष में हो जाता है। इन के वरीयता क्रम के पाँच आधार हैं –

1. अर्थ का अभाव कामोपभोग तथा धर्माचरण दोनों का बाधक है। अतः मानव का लक्ष्य अर्थ ही है।
2. जैविक वासनाओं की पूर्ति की समस्या की अनुपस्थिति के कारण मानव न तो अर्थोपार्जन में ही प्रवृत्त होता है, न ही धर्माचरण में ही। अतः मानव का लक्ष्य काम ही है।
3. धर्म के अभाव में लौकिक व्यवस्था का अभाव हो जाता है। लौकिक अव्यवस्था के कारण अर्थ, काम तथा मोक्ष उपलब्ध नहीं हो पाता है। अतः मानव का लक्ष्य धर्म ही है।
4. धर्म, अर्थ तथा काम परस्पर निरपेक्ष तथा स्वतंत्र हैं। अतः मानव के लक्ष्य अर्थ, काम तथा धर्म तीनों समान रूप से हैं।
5. दुःखों की अत्यधिक निवृत्ति मोक्षावस्था में ही सम्भव है। अतः मानव का लक्ष्य मोक्ष ही है।

कबीर दर्शन मानव के लक्ष्य का निर्धारण उपर्युक्त प्रथम चार आधारों पर नहीं करता है। वह अर्थ, काम तथा धर्म को न तो निरपेक्ष मानता है न ही स्वतंत्र। कबीर दर्शन मोक्ष को मानव का एकमात्र लक्ष्य स्वीकार करता है, क्योंकि लक्ष्य के त्रिवर्ग को कबीर दर्शन मोक्ष की सिद्धि के लिये उपादेय मानने के कारण गौण या पूरक लक्ष्य मानता है। कबीर दर्शन इसी उपादेयता के आधार पर त्रिवर्ग तथा मोक्ष को साध्य तथा साधन दो वर्गों में विभक्त करता है। अर्थ, काम तथा धर्म साधन हैं। मोक्ष के साधन रूप में हैं। साध्य सिद्ध हो जाने पर साधन गौण हो जाता है। साध्य के सिद्धि की पूर्वावस्था में साधन मुख्य रहते हैं।

इस प्रकार लक्ष्य चतुष्टय का साध्य–साधन के रूप में परस्पर औचित्य, अर्थ का काम के अनुसार, काम का धर्म के अनुसार तथा धर्म का मोक्ष के अनुसार होना है। मानव का लक्ष्य साधन के अभाव में काल्पनिक विचार मात्र रह जाता है। मानव के लक्ष्य को मूर्त रूप देने वाले उस के साधनों की उपेक्षा, लक्ष्य की उपेक्षा बन जायेगी। अतः साधनों पर भी दृष्टि निक्षेप अपेक्षित है। मानव के लक्ष्य चतुष्टय अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष की समुचित सिद्धि के लिये स्थिर भाव से अविच्छिन्न रूपेण सम्पादित क्रियाएँ लक्ष्य का साधन हैं। वस्तुतः कबीर का दर्शन, मोक्ष को ही मानव का एकमात्र लक्ष्य मानता है।

साधन हेतु प्रेरक परिवेश तथा व्यक्तिगत क्षमता का होना साधन की अर्हताएँ हैं। आहार शुद्धि, कथनी–करनी में सामंजस्य, श्रम की महत्ता एवं मध्यम मार्ग का अनुसरण साधना के पूर्वांग हैं। गृह त्याग तथा विशेष वेश धारण करना आवश्यक है।

जैसा अन जल खाइए, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिए, तैसी बानी सोय।।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिर्लम्भे सर्वग्रंथीनां विप्र मोक्षः।।[1]

कबीर न केवल तेल, घी खाने का निषेध करते हैं :–

आधी अरु रूखी भली, सारी सौ संताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप।।

अपितु मांसाहार की घोर निन्दा करते हुए, उस के दुष्परिणामों से चेताते भी हैं :–

खुश खाना है खीचरी, माहि परा टुक नोन।
मांस पराया खाय करि, गरा कटावै कौन।।

....

जाका गला तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हारा।

....

जस मांस नर का, तस मांस पशु का, रुधि–रुधिर एक सारा जी।

धार्मिक अनुष्ठानके नाम पर किसी भी प्रकार के मांसाहार का विधान सुगति प्रदायक प्रतीत होने पर भी नरकगामी बनाने का माध्यम होता है। अमिषाहारी मानव का मूलोच्छेद वैसे ही हो जाता है, जैसे मूली के खेत से समूलतः मूली उखाड़ ली जाती है।

तै नर जड़ से जाहिगै, ज्यों मूरी का खेत।

मनुष्य का अस्तित्त्व मुख्यतः ज्ञानपरक है। कोई भी नशीला पदार्थ मानव के मस्तिष्क को किसी–न–किसी प्रकार से कुण्ठित तथा विकृत अवश्य करता है। मादक पदार्थों का ग्रहण माता–पिता सहित स्वयं को नरकगामी बना देता है।

....................सुरा पान सौ हेत।
ते नर नरकै जाहिगै, माता पिता समेत।।

कथनी–करनी में सामंजस्य से तात्पर्य सिद्धान्तों के व्यवहार में लाने से है। किसी भी सिद्धान्त की सार्थकता उस की व्यावहारिकता पर निर्भर है। जैसे अच्छी–से–अच्छी औषधि भी सेवन न किये जाने पर रोगोन्मूलनार्थ व्यर्थ सिद्ध होती है, वैसे ही अच्छी–से–अच्छी कथनी भी करनी के अभाव में व्यर्थ हो जाती है। करनी के समक्ष कथनी गौण हो जाती है। करनी के अभाव में कथनी अभीष्ट सिद्धि हेतु वैसे ही व्यर्थ सिद्ध हो जाती है।

करनी थोथी जात में, करनी उदम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरैं भव जल पार।।
कथनी बदनी छाड़ि कै, करनी सौ चितलाय।
नरहि नीर प्यायै बिना, कबहूँ प्यास न जाय।।

उत्कृष्ट सिद्धान्तों का प्रवचन भी आचरण में न उतारे जाने पर कुत्ते के भौंकने की तरह, सुनी–सुनायी बातों के कथन के समान अज्ञता का सूचक है।

करनी जिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूकत फिरै, सुनी सुनायी बात।।

किसी भी अभीष्ट की सिद्धि में श्रम की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। श्रम के अभाव में न तो कुछ किया जा सकता है न कुछ पाया ही जा सकता है। भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में प्रगति के लिये श्रम वैसे ही अपेक्षित है जैसे जमे घी को निकालने के लिये अंगुली को टेढ़ा करना।

श्रम ही तै सब कुछ बने, बिन श्रम मिले न काहि।
सीधी अंगुली घी जमी, कबहूँ निकसै नाहि।।

समस्त कर्मों का शोध श्रम से ही सम्भव है, जिस में श्रम की क्षमता नहीं है वह प्रगति नहीं कर सकता है एवं विस्मृतिग्रस्त हो दुर्गति को प्राप्त हो जाता है। जैसे बिना हाथ चलाये सामने थाली में रखा भोजन स्वतः मुख में नहीं चला जाता, वैसे ही सामर्थ्यवान की भी सारी क्षमता श्रम के अभाव में व्यर्थ सिद्ध होती है।

कैसा भी सामर्थ्य हो, बिन उद्यम दुख पाय।
निकट ....कर चले, कैसे मुख में जाय।।

साधक का गृह में निवास, परम्परागत मान्यता से साधना में बाधक माना जाता था क्योंकि घर में रहते हुए व्यक्ति का भौतिकता से अलग तथा अन्तर्मुखी होना सन्देहास्पद प्रतीत होता है। इस मान्यता का कबीर खण्डन करते हुए मानते हैं, कि यदि घर में रहते हुए आध्यात्मिक प्राप्ति में विक्षेप आने की सम्भावना है, तो गृह त्याग कर जंगल में निवास करने पर भी बाधाओं की उपस्थिति की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। बाधाएँ दोनों जगह हो सकती हैं।

घर तजि बन बाहरि कियो वास, घर बन देखो दोउ निरास।
जहाँ जाऊँ तह सोग संताप, बुरा मरण की अधिक वियाप।।

वस्तुतः बाधाओं और विक्षेपों का जनक मन है। मन ही साधक है, तो म नही बाधक भी है। मन के अधीनस्थ हो कर मानव दिग्भ्रमित होता रहता है। अतः मन और आशा के पाश से मुक्त हुए बिना, उदास भाव से वन में निरन्तर वास करने का कोई अर्थ नहीं है। घर छोड़ कर कन्द–मूल का आहार ग्रहण करने मात्र से अपवित्र मन और विषय–विकार का छूटना सम्भव नहीं है।

घर तजि बन खंडि जाइये, खानि खानि खाइये कन्दा।
विषय विकार न छूटै, ऐसा मन गन्दा।।
....
बनह बसै का कीजिये, जै मन नाहि तजै विकार।

साधना के लिये वनवास कोई अर्थ नहीं है। अर्थ है तो मात्र मन को निर्विकार बनाने का। बिना मन में ठहराव आये साधना सम्भव नहीं है। साधना के लिये घर–वन दोनों समान हैं। वन में रहने पर भी कल्पनाएँ जाग्रत होंगी, फिर साधक कहाँ जायेगा? यदि उसे गुरु कृपा प्राप्त हो जाती है, तो उसे घर में ही भक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो जायेंगे।

घर में जोग, भोग घर ही में, घर तजि मन नाहि जावै।
वन के गये कल्पना उपजै, तब हौं कहाँ समावै।।

घर में भुक्ति–मुक्ति, घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।
घर में वस्तु, वस्तु में घर है, घर ही वस्तु मिलावै।।

विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित अलग–अलग वेशभूषाओं का साधना से कोई सम्बन्ध नहीं है। सामान्य वेशभूषा में रहते हुए भी साधना कर के सफ़लता पायी जा सकती है। सिद्धि वेशभूषा के कारण नहीं मिलती है। तिलक लगाने, माला पहनने, दाढ़ी–मूँछ रखने या मुड़ाने का साधना क्षेत्र में कोई उपयोग नहीं है। वेशभूषा केवल ऐसे साधक को जन सामान्य से कुछ भिन्न प्रतीत कराती है। बाल मूड़ने से अच्छा है, कि विषय से विकृत मन को मूड़ा जाये। केश लुंचन कराने या जटा रखने का कोई आध्यात्मिक औचित्य नहीं है। न तो चर्म पहनना, न ही दिगम्बर रहना ही साधना में सहायक नहीं है क्योंकि पशु, मृग आदि नग्न ही रहते हैं परन्तु उन में इस से आध्यात्मिकता नहीं आ पाती है।

माला तिलक लगाइ कै, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ कै, चलै दुनी के साथ।।

....
कहा मयौ तिलक गरे जप माला, मरम न जानै मिलन गोपाला।

मूड़ मुड़ाये हरि मिलै, सब कोई लेइ मुड़ाये।
बार–बार के मूँड़तै, भेड़ न बैकुण्ठ जाये।।

लुंचित मुंचित मोनि जटाधर, ए जूकहै सिधि होई।
जहाँ का उपज्या तहाँ बिलाना, हरि पद बिसरया जबहिं।।

कबीर की वाणी में एक ओर जहाँ हठयोग के दर्शन होते हैं वहीं सामान्य उपदेश भी प्राप्त होते हैं। सम्भवतः कबीर की शुष्क हठयोग से धीरे–धीरे उन्हें विरक्ति हुई होगी। वह उन्हें जन सामान्य की समझ और बुद्धि के लिये दूर की कौड़ी प्रतीत हुआ होगा। अन्ततः निर्गुण, निराकार ब्रह्म की भक्ति ही उन्हें तत्कालीन मध्ययुगीन स्थितियों के अनुकूल अनुभूत हुई होगी।[2]
मानवेत्तर समस्त प्राणियों का अस्तित्त्व भोगपरक है, कर्मपरक नहीं है। यह सभी पूर्वकृत कर्मों के मात्र फल का भोग करते हैं। मानव अन्य प्राणियों की भाँति मात्र कर्मों का भोग ही नहीं करता है, वरन् कर्म भी करता है। मानव को कर्म की स्वतंत्रता प्राप्त है। किन्तु वह पूर्णतः भोग निरपेक्ष भी नहीं है। वह पूर्व संचित कर्मों का भोक्ता भी है और संकल्प स्वातंत्र्य के आधार पर कर्त्ता भी है। मानव जीव के विकास की चरम कड़ी है। इस लिये समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ है।
कबीर दर्शन ब्रह्म, जीव, जगत् एवं माया से सम्बन्धित विचार उपनिषद और शंकर अद्वैत वेदान्त की व्याख्या के अनुरूप है। कबीर दर्शन एक प्रकार से आध्यात्मिक मानवतावाद की स्थापना करता है, जिस में मानव का परम लक्ष्य मानव की स्वरूप की प्राप्ति है। कबीर दर्शन में इसे ही मोक्ष माना गया है और त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म तथा काम) की तुलना में इसे श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। अर्थ, काम तथा धर्म साधन हैं; मोक्ष साध्य है। साध्य सिद्ध हो जाने पर साधन गौण हो जाता है, परन्तु साध्य की सिद्धि की पूर्वावस्था में साधन मुख्य रहते हैं।
कबीर दर्शन व्यापक नैतिक व्यवस्था को ही धर्म मानता है और कर्मकाण्डों का विरोध करता है। नैतिक व्यवस्था आन्तरिक होती है, बाहयाचार से उस का कोई सरोकार नहीं होता है। मानव मात्र मानव है। धार्मिक सम्प्रदायों के अनुसार न तो वह हिन्दू है न ही मुसलमान न ही अन्य कुछ और। विभिन्न जातियाँ–उपजातियाँ चातुर्वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था या सामाजिक व्यवस्था को मात्र चलाने के लिये हैं। मानव का अस्तित्त्व इन सब से ऊपर है। अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिये

उन साधनों का अनुष्ठान अनिवार्य है, जिन के द्वारा उस का शरीर, मन एवं उस की बुद्धि परिशुद्ध हो कर सक्षम हो सके। शरीर की शुद्धि के लिये अन्न की शुद्धि अनिवार्य है, मन की शुद्धि के लिये गुरु कृपा एवं आत्म प्रयास दोनों अनिवार्य हैं। शरीर एवं मन की शुद्धि के पश्चात् स्वाभाविक रूप से क्रोध–मोह, राग–द्वेष आदि का शमन हो जाता है, जिस से मानव चिन्मयता एवं आनन्दरूपता की प्राप्ति कर पाता है, जिस में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, ज्ञान एवं भक्ति, कर्म एवं संन्यास का अभूतपूर्व समन्वय हो जाता है।

सहायक ग्रन्थ सूची

कबीर ग्रन्थावली: डॉ. श्यामसुन्दर दास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012

संदर्भ सूची

1. छान्दोग्योपनिषद् 7 ।26 ।2
2. तंत्र और सन्तः डॉ राममूर्ति त्रिपाठी, पृ. 326